इकाई 2 भगवान की अवधारणा एवं स्वरूप

इकाई की रूपरेखा

2.0 उद्देश्य

2.1 प्रस्तावना

2.2 भगवान का स्वरूप

2.3 भगवान के गुण

2.4 निरपेक्ष ब्रह्मा के रूप में भगवान

2.5 भगवान के विभिन्न नाम

2.6 भगवान के अस्तित्व के लिये प्रमाण

2.7 हिन्दू धर्म दर्शन में भगवान

2.8 विश्व के विभिन्न धर्मों में भगवान

- 2.8.1 ईसाई मत
- 2.8.2 ईस्लाम मत
- 2.8.3 पारसी मत
- 2.8.4 कन्फ्युशियस मत
- 2.8.5 यहुदी

2.9 सारांश

2.10 पारिभाषिक शब्दावली

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

2.12 बोध प्रश्न

2.0 उद्देश्य

भगवान की अवधारणा एवं स्वरूप से संबंधित इस ईकाई के अध्ययन के बाद आप:

- भगवान के स्वरूप एवं उसके गुणों को बता सकेंगे।
- विभिन्न धर्म एवं दार्शनिक सम्प्रदायों में भगवान के अस्तित्व की सिद्धि के लिए दिये गए प्रमाणों को बता सकेंगे।
- हिंदू धर्म एवं दर्शन में भगवान की अवधारणा एवं स्वरूप को बता सकेंगे।
- विश्व के विभिन्न धर्म एवं दर्शन में भगवान की अवधारणा एवं स्वरूप को बता सकेंगे।

2.1 प्रस्तावना

श्रीमद्भागवत के अनुसार "वदन्ति तत्रत्वविदस् तत्वं यज्ज्ञानमद्वयम्।
ब्रह्मेति पर्मात्मेति भगवानिति शब्द्यते।। 1/2/11

अर्थात् तत्ववेत्ताओं (जो परमतत्व को प्राप्त कर चुके हैं) का कथन है कि उनके अनादि काल से

तीन रूप हैं- ब्रह्म, परमात्मा, भगवान। भगवान गुणवाचक शब्द है जिसका अर्थ गुणवान होता है। यह भग धातु से बना है। भग के छह अर्थ हैं-1. ऐश्वर्य 2. धर्म 3. श्री 4. यश 5. ज्ञान 6. वैराग्य। इसका अर्थ यह नहीं है कि उसमें केवल ये छह गुण हैं, उसमें अनंत गुण हैं।कोई भी मनुष्य या देवता आदि भगवान नही कहे जा सकते हैं। यह शब्द केवल ईश्वर या परमात्मा को कहा जाता है। किन्तु विशेषण रूप में देवताओं और उनके अवतारों, महापुरूषों, धर्मगुरुओं आदि को भगवान कहा जाता है।

भगवान का एक और विश्लेषण इस प्रकार होता है कि भ अर्थात् भक्ति, ग अर्थात ज्ञान, वा अर्थात् वास, न अर्थात् नित्य। अर्थात् भगवान वह है जिसमें ज्ञान और भक्ति नित्य रूप से वास करता है अर्थात् उनमें रहता है। भगवान अनंत ज्ञानवाले हैं अर्थात् उनका ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता। अनंत दर्शनवाले हैं। परमात्मा और शुद्ध प्रेम रूप हैं। भगवान किसी भी दुख-सुख से अप्रभावित रहते हैं।

2.2 भगवान का स्वरूप

तैत्तिरीयोपनिषद् में कहा गया है-जिससे संसार उत्पन्न हो, जिससे संसार का पालन हो और जिसमे संसार का लय हो, उसका नाम भगवान है।

भागवत पुराण में भी कहा गया है कि 'जिससे संसार उत्पन्न हो, जिससे संसार का पालन हो, जिसमें संसार का लय हो, उसका नाम है भगवान श्रीकृष्ण।'

भगवान में सभी शक्ति प्रकट होती है। उसके अनंत रूप और नाम है। उसमें अनंत गुण है।इसीलिए उपनिषदें भगवान के स्वरूप का वर्णन नेति नेति कहकर करते हैं। वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान,सभी वस्तुओं का ज्ञाता तथा सभी वस्तुओं के आंतरिक रहस्यों का वेत्ता है। इसलिये वे प्रकृति या माया के गुणों से रहित होने के कारण निर्गुण और स्वाभाविक ज्ञान, बल, क्रिया, वात्सल्य, कृपा, करूणा आदि अनंत गुणों का आश्रय होने से सगुण भी है।यही भगवान उपनिषदों में ब्रह्म शब्द से अभिहित किये जाते हैं और यही सभी कारणों के कारण होते हैं। किन्तु इनका कारण कोई नहीं।

भगवान एक स्वतन्त्र एवं यथार्थपरक सत्ता हैं। भगवान सर्वशक्तिमान, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक, दयालु, कृपालु, नित्य, अनादि, असीम, अनन्त, अपरिमित, अपरिवर्तनीय या अपरिणामी सत्ता के रूप में माना जाता हैं। भगवान को पूर्ण तथा स्वतन्त्र माना जाता है जो सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता, संहारकर्त्ता और विश्व का आदि कारण है। विभिन्न धर्मों में, भले ही वह हिन्दू धर्म हो, ईसाई धर्म या यहूदी धर्म या इस्लाम धर्म हो, थोड़े बहुत अन्तर के साथ इसी रूप में भगवान के अस्तित्व को स्वीकार किया गया है। अनेक दार्शनिक और धार्मिक व्यक्ति भी भगवान के स्वरूप के बारे में यही मानते हैं। यहाँ तक कि जब सामान्य व्यक्ति भी भगवान के अस्तित्व के सम्बन्ध में बात करता है तो भगवान के बारे में इसी प्रकार की धारणा को अभिव्यक्त करता है। भक्त भी ऐसे ही भगवान को आराध्य देव के रूप में स्वीकार करता है जिसमें असीम शक्ति, ज्ञान,दयालुता और नित्यता आदि विशिष्ट गुण पाये जाते हैं। धर्मपरायण व्यक्ति भगवान को व्यक्तित्वपूर्ण मानते हैं तथा उसने समस्त मानवीय सद्गुणों का आरोपण करते हैं।

भगवान को ऐसी अनिवार्य सत्ता माना जाता है जो अपने अस्तित्व के लिए किसी अन्य वस्तु पर निर्भर नहीं है, जो अनादि,अनन्त, स्वयंभू, नित्य अथवा शाश्वत है। इस प्रकार भगवान

भौतिक वस्तु न होकर अभौतिक सत्ता है।भगवान को शरीर रहित ऐसी अभौतिक सत्ता माना जाता है जो मानवीय अनुभूति और तर्कबुद्धि की सीमाओं से परे है। साधारणतया विचारकों में इस संदर्भ में भी सहमति है कि भगवान कोई ऐसा विचार, मूल्य या आदर्श नहीं है जिसे कि मनुष्य ने उत्पन्न किया है। प्रत्येक विचार, मूल्य या आदर्श मानव की उपज होता है और मनुष्य से निरपेक्ष या स्वतन्त्र उसकी सत्ता की कल्पना नहीं की जा सकती है। किन्तु भगवान को मानव सहित समस्त ब्रह्माण्ड का सृष्टिकर्त्ता माना जाता है जिसका अस्तित्व मानव-मस्तिष्क पर निर्भर नहीं है।

भगवान के स्वरूप के सम्बन्ध में दार्शनिकों में पर्याप्त मतभेद है, पूर्णतया निश्चित रूप से यह कहना संभव नहीं है कि भगवान का स्वरूप क्या है? कतिपय दार्शनिक भगवान को सगुण,साकार तथा व्यक्तित्व सम्पन्न सत्ता मानते हैं जबकि अन्य कुछ दार्शनिक भगवान को निर्गुण, निराकार, निर्वैयक्तिक या व्यक्तित्व रहित मानते हैं। ईश्वरवादी दार्शनिकों में भगवान के स्वरूप के सम्बन्ध में इस आधारभूत मतभेद के होते हुए भी प्रायः सभी यह मानते हैं कि भगवान अभौतिक तथा विशुद्ध चैतन्य सत्ता है जो अनादि, अनन्त, शाश्वत एवं स्वयंभू है। वह सम्पूर्ण सृष्टि का आदि-कारण है।

2.3 भगवान् के गुण

भगवान सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान है।वह न्याय, प्रेम, सौंदर्य की साक्षात मूर्ति है। उसमें वह सभी गुण विद्यमान है जिसकी मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकता। इसलिये वह गुणातीत है।वह करूणासागर, दयालु और प्राणियों का भला करने वाला है। इसकी सत्ता त्रिकालाबाधित है अर्थात् वह सृष्टि के पूर्व भी, सृष्टि में भी और प्रलय सभी काल में विद्यमान रहता है।वह ज्ञान स्वरूप और आनंद स्वरूप है। अनन्त है अर्थात उसका कभी अन्त नहीं **है।भागवत में कहा गया है कि उसके अनंत गुण हैं। (1/18/14)**उसके गुणों को कोई गिन नहीं सकता। **'गुणात्मनस्तेऽपि गुणान् विमातुं हितावत्तीर्णस्य क ईशिरेऽस्य।अर्थात् कोई व्यक्ति पृथ्वी के एक-एक कणों को भले ही गिन लेने में समर्थ हो जाये। परन्तु भगवान के गुणों को कोई भी नहीं गिन सकता। भागवत (10/14/17)**

उपनिषदों में भगवान को निर्गुण कहा गया है। निर्गुण कहने का यह अर्थ नहीं है कि उसमें कोई गुण नहीं हैं, निर्गुण कहने का अर्थ है कि उसके गुणों का कोई अंत नहीं है।

भक्तिमार्गीयों ने आराधना के विषय के रूप में ऐसे भगवान को स्वीकार किया है जो समस्त अपूर्णताओं, कमियों, बुराइयों, दुर्बलताओं, सीमाओं, विसंगतियों तथा दोषों से परे है तथा जो समस्त सद्गुणों से सम्पन्न है। सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, अपरिमितता, नित्यता, पूर्ण-शुभत्व, असीमित प्रेम, अपार करुणा आदि ऐसे ही गुण हैं जिनका भगवान में होना अनिवार्य माना जाता है। भगवान की आराधना करने वाला भक्त भगवान को सर्वगुण सम्पन्न मानकर ही उसकी आराधना करता है। भक्त अपनी श्रद्धा एवं आस्था के आधार पर इन गुणों को स्वीकार कर लेता है, वह इसके लिए तर्क या प्रमाण की आवश्यकता का अनुभव नहीं करता। परन्तु दार्शनिक तो श्रद्धा या आस्था के ही आधार पर इन गुणों को स्वीकार नहीं कर सकता, इसलिए वह इस सम्बन्ध में अनेक गंभीर प्रश्न उठाता है और उनके तर्कसंगत उत्तर खोजने का प्रयास करता है।

भगवान के जिन गुणों का उल्लेख धर्मशास्त्रियों और दार्शनिकों ने किया है, उन्हें दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है- (1) तत्वमीमांसीय गुण और (2) नैतिक गुण । सर्वशक्तिमत्ता, सर्वज्ञता, सर्वव्यापकता, अपरिमितता, नित्यता आदि गुण 'तत्व मीमांसीय गुण हैं और शुभत्व, प्रेम, दयालुता आदि गुणों को 'नैतिक गुण के अन्तर्गत रखा जा सकता है।

1. तत्वमीमांसीय गुण-

1) सर्वशक्तिमत्ता -भगवान को सर्वशक्तिमान और सर्वोच्च सत्ता के रूप में स्वीकार किया गया है। 'सर्वशक्तिमान' कहने का अर्थ है, असीम शक्तियुक्त होना। सर्वशक्तिमान होने के कारण भगवान को सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का नियन्ता माना जाता है। भगवान के लिए कोई भी कार्य करना असंभव नहीं है। वह प्रकृति के समस्त नियमों का नियामक है।भगवान सभी के ऊपर शासन करता है, क्योंकि यह सर्वशक्तिसम्पन्न है। विश्व की सभी शक्तियां भगवान के अधीन हैं। भगवान परमशक्ति होने के कारण परम शासक है।इसका अर्थ है, भगवान जो चाहे कर सकता है, जो नहीं चाहे नहीं कर सकता है और यदि दूसरी प्रकार से चाहे तो दूसरी प्रकार से कर सकता है। भगवान पूर्णतया स्वतन्त्र है।

2) सर्वव्यापकता (Omnipresence)- सर्वव्यापकता का अर्थ होता है, सर्वत्र व्याप्त होना अर्थात्, ऐसा कोई स्थान नहीं है जहां भगवान न हो।भगवान विश्व के कण-कण में व्याप्त माना जाता है। ईश्वरवादी विचारकों के अनुसार जिस प्रकार शरीर के प्रत्येक अंग में आत्मा व्याप्त होती है, उसी प्रकार संसार के कण-कण में भगवान विद्यमान है। धार्मिक भावना के विकास के लिए भी भक्तिमार्गी भगवानवादियों ने भगवान की सर्वव्यापकता को अनिवार्य माना है। एक साधक या भक्त एक ऐसे भगवान की कल्पना करता है जो निरन्तर उसके समीप हो तथा उसकी कमियों को दूर करने के लिए प्रयत्नशील हो। एक ऐसा भगवान जो विश्वातीत है, मनुष्य से सुदूर है, भक्ति का पात्र नहीं बन सकता। इस प्रकार सर्वशक्तिमत्ता की तरह सर्वव्यापकता भी भगवान के अनिवार्य गुण माना जाता है।

3) सर्वज्ञता (Omniscience)- भगवान को सर्वशक्तिमान और सर्वव्यापक मानने के साथ ही साथ उसे सर्वज्ञ भी माना गया है। सर्वज्ञ का शाब्दिक अर्थ है जिसे सब वस्तुओं का ज्ञान हो या जो सब कुछ जानता हो। भगवान का ज्ञान पूर्ण कहलाता है क्योंकि वह समस्त विषयों को पूरी तरह से जानता है। भगवान को समस्त चराचर, भौतिक और चेतन सत्ताओं के ज्ञान के साथ ही साथ भूत, वर्तमान और भविष्य की सभी घटनाओं का पूर्ण ज्ञान रहता है। इस जगत में ऐसी कोई घटना नहीं है जिसका भगवान को पूर्ण ज्ञान न हो। इस प्रकार भगवान का पूर्ण तथा असीमित ज्ञान मनुष्य के अपूर्ण तथा सीमित ज्ञान से भिन्न है।

धार्मिको का अभिमत है कि भगवान की सर्वज्ञता का कारण यह है कि उसने ही सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की रचना की है और भगवान विश्व में व्याप्त है। भगवान का ज्ञान किसी घटना विशेष से सम्बद्ध नहीं होता अपितु सम्पूर्ण विश्व से सम्बद्ध होता है। मानव की चेतना सीमित है जबकि भगवान में असीम, अनन्त चेतना है। विश्व में ऐसी कोई भी घटना नहीं है जिसे भगवान के ज्ञान से से परे माना जा सके।

4) **अनन्तता और नित्यता (Infinity and Eternity)-** धर्मशास्त्रियों ने भगवान को नित्य सत्ता के रूप में स्थापित किया है। 'नित्य शब्द का प्रयोग प्रायः दो अर्थों में किया गया है। पहले अर्थ में भगवान को नित्य कहने का आशय यह है कि वह शाश्वत, अविनाशी, अपरिणामी, अपरिवर्तनशील, अनादि तथा अनन्त है। भगवान के स्वरूप के विपरीत समस्त सांसारिक पदार्थ, विनाशशील, नश्वर, परिणामी, परिवर्तनशील एवं अनित्य हैं। सभी वस्तुओं की उत्पत्ति होती है तथा ये विनष्ट हो जाते हैं। भगवान को इन समस्त वस्तुओं का आदि कारण माना जाता है। नित्यता के इस अर्थ में भगवान सर्वदा अपरिवर्तित एकरूप तथा अविकारी बना रहता है।

नित्यता के दूसरे अर्थ में भगवान को कालातीत या काल से परे माना जाता है। यहाँ यह निहितार्थ है कि अन्य वस्तुओं की भांति काल भी भगवान की रचना है । काल का स्रष्टा होने के कारण भगवान काल से परे है। इस अर्थ में भी भगवान की नित्यता के अन्तर्गत भगवान की शाश्वतता, अनश्वरता तथा अपरिवर्तनशीलता स्थापित रहती है ! अनन्तता शब्द का भावात्मक अर्थों में प्रयोग करते हुए कहा गया है अनन्तता पूर्णता और स्वतन्त्रता का द्योतक है। भगवान पूर्ण है, आप्तकाम है, वह किसी की अपेक्षा नहीं करता, वह किसी पर आधारित भी नहीं है। मृत्यु और विनाश से परे होने के कारण भगवान समस्त दोषों से भी परे है।

5) **असीमितता या अपरिमितता (Unlimitedness)-**

धर्मशास्त्रियों ने उपरोक्त गुणों के साथ ही साथ भगवान को असीम या अपरिमित भी माना है। संसार के समस्त भौतिक पदार्थ सीमित एवं परिमित है। संसार के समस्त भौतिक पदार्थ कुछ निश्चित सीमाओं द्वारा निर्धारित होते हैं जबकि भगवान समस्त सीमाओं के परे है।कुछ विद्वानों ने असीमितता शब्द को उपरोक्त अर्थ से भिन्न मानते हुए इसका अर्थ सभी दृष्टियों से पूर्ण होने से लिया है। जो अपने आप में पर्याप्त हो अर्थात् आप्तकाम हो भगवान में कोई अभाव, अपूर्णता, कमी, दोष या विसंगति नहीं है जिससे कि उसे सीमित माना जाय।

2 नैतिक गुण-

भगवानवादियों ने भगवान के विभिन्न गुणों के अन्तर्गत अनेक नैतिक गुणों का भी समावेश किया है। सर्वगुण सम्पन्न, व्यक्तित्वपूर्ण भगवान में प्रेम, शुभत्व, करुणा, परोपकार, न्याय, उदारता, क्षमाशीलता आदि सद्गुण पाए जाते हैं। ऐसा भगवान विश्व का रचयिता होने के कारण समस्त प्राणियों से प्रेम करता है तथा उसका प्रेम निःस्वार्थ एवं असीम है। भगवान की कृपा, उदारता, क्षमाशीलता और करुणा भी असीमित है। भगवान सर्वदोषविर्निमुक्त, परम शुभ तथा परम पवित्र है जो समस्त कमियों, बुराइयों, दोषों, विसंगतियों और अशुभों से परे है। भगवान न्यायप्रिय एवं निष्पक्ष है। भारतीय दर्शन में अनेक दार्शनिकों ने भगवान को कर्मों का निर्णायक भी माना है जो मनुष्य के कर्मों के अनुसार मनुष्य को सुख-दुःखादि फल प्रदान करता है।

2.4 निरपेक्ष ब्रह्मा के रूप में भगवान

भगवान के स्वरूप के सम्बन्ध में धर्म दार्शनिकों एवं धर्मशास्त्रियों ने दो प्रकार की धारणाओं का प्रतिपादन किया है। कुछ धर्मदार्शनिक भगवान को व्यक्तित्वपूर्ण, सगुण एवं साकार मानते हैं

जबकि कुछ भगवान को निराकार, व्यक्तित्वविहीन, निर्गुण, निर्विशेष परमतत्व मानते हैं। भगवान के सम्बन्ध में दूसरी अवधारणा को भगवान की 'निरपेक्ष अवधारणा' के रूप में अभिहित किया जाता है। कुछ भारतीय एवं पाश्चात्य भगवानवादी भगवान की निरपेक्ष अवधारणा का समर्थन करते हैं। भारतीय विचारधारा के अन्तर्गत अद्वैत वेदान्त में शंकराचार्य ने इसी धारणा की स्थापना की है। पारमार्थिक दृष्टि से शंकराचार्य ने एक ही परमतत्व की सत्ता को स्वीकार किया है जो निराकार, निर्गुण, निरपेक्ष एवं निर्विशेष ब्रह्म है। भारतीय दर्शन के उद्गम स्रोत के रूप में स्वीकार किए जाने वाले उपनिषदों में पहले ही निरपेक्षवाद, एकतत्ववाद, ब्रह्मवाद या आध्यात्मवाद की स्थापना की जा चुकी है। शंकराचार्य ने उपनिषदों की विचारधारा को ही अपने अद्वैत वेदान्त में तार्किक दृष्टि से प्रस्तुत किया है। शंकर के अनुसार भगवान, जीव तथा जगत पारमार्थिक दृष्टि से यथार्थ न होकर माया अथवा अविद्या के फलस्वरूप उत्पन्न प्रतिभास या मिथ्या प्रतीतियां मात्र हैं।

जगत की समस्त वस्तुएं अनित्य एवं परिवर्तनशील हैं। शंकर इसके आगे बढ़ते हुए यह तर्क करते हैं कि अनित्यता और अपरिवर्तनशीलता के मूल में एक शाश्वत एवं स्थायी सत्ता अवश्य विद्यमान है जो सम्पूर्ण जगत का अधिष्ठान अथवा मूल आधार है। इसी नित्य, अपरिवर्तनशील अपरिणामी, अविकारी, चैतन्य सत्ता को शंकर ने ब्रह्म कहा है। उनके अनुसार ब्रह्म निराकार निर्विशेष और निर्गुण है और यह समस्त भेदों एवं उपाधियों से रहित है। ब्रह्म समस्त वर्णनों से परे है, वह समस्त गुणों, विशेषताओं और धर्म से भी परे हैं। ब्रह्म में किसी गुण का समावेश करना उसे सीमित करना है अतः वह अनिर्वचनीय एवं अनभिलाप्य है। उसका 'नेति नेति' या निषेधात्मक दृष्टिकोण रूप से उल्लेख किया जा सकता है। शंकर ने उपनिषदों का अनुकरण करते हुए ब्रह्म को चैतन्य स्वरूप, ज्ञानस्वरूप, आनन्दस्वरूप माना गया है, शंकराचार्य का मत है कि ब्रह्म सजातीय, विजातीय एवं स्वगत भेदों से रहित है। और समस्त विकारों से रहित है। ब्रह्म को सत्, चित, आनन्द या सच्चिदानन्द कहा गया है। इस सम्बन्ध में अद्वैत वेदान्ताचार्यों ने यह स्पष्ट किया है कि सत्, चित् और आनन्द ब्रह्म के गुण न होकर ब्रह्म के स्वरूप के अभिन्न अंश अथवा मूलतत्व हैं। इस प्रकार निर्गुण एवं निराकार ब्रह्म को ही अद्वैत वेदान्त में पारमार्थिक दृष्टि से परमतत्व एवं जगत का अधिष्ठान माना गया है।

जहां तक ब्रह्म के ज्ञान का प्रश्न है, शंकराचार्य की मान्यता है कि ब्रह्म को अनुभव एवं तर्कबुद्धि के माध्यम से नहीं जाना जा सकता है क्योंकि निराकार, निर्गुण एवं निरपेक्ष होने के कारण ब्रह्म बुद्धि की समस्त अवधारणाओं से परे हैं। ब्रह्म स्वयं प्रकाशमान एवं स्वयंसिद्ध सत्ता है जिसे प्रमाणों द्वारा सिद्ध किए जाने की कोई आवश्यकता नहीं है। शंकर के अनुसार श्रुतियां ब्रह्म की सत्ता के प्रमाण हैं भारत में वेद, उपनिषद एवं गीता को श्रुति का स्थान दिया गया है जिसके कथन प्रामाणिक और सत्य माने जाते हैं। उपनिषदों में निर्गुण, निराकार, निर्विशेष, निराधार एवं सचिदानन्द ब्रह्म के अस्तित्व को प्रतिपादित किया गया है अतः ब्रह्म का अस्तित्व असंदिग्ध है। ब्रह्म की सत्ता के लिए श्रुति के रूप में इन उपनिषदों के कथन ही अंतिम एवं अकाट्य प्रमाण है। श्रुतियों के कथनों को स्वतः प्रमाणित माना जाता है जिन्हें प्रमाणित करने की आवश्यकता नहीं होती।

पाश्चात्य दर्शन में भी कुछ ऐसे महत्वपूर्ण दार्शनिक हुये हैं जिन्हें भगवान या परम-तत्व को निर्वैयक्तिक सत्ता के रूप में स्वीकार करते हैं। इन दार्शनिकों में शैलिंग, हीगेल, ग्रीन, ब्रेडले आदि का नाम मुख्य रूप से उद्धरणीय है। इन दार्शनिकों ने परमतत्व को सगुण, साकार, सविशेष एवं व्यक्तित्वपूर्ण न मानकर उसे निर्वैयक्तिक, निराकार निरपेक्ष, निर्गुण एवं निर्विशेष

सत्ता मानते हैं।

भगवान या परमतत्व के बारे में उपरोक्त धारणा की आलोचना करने वाले धार्मिक दृष्टि से इस मत को अनुपयोगी मानते हैं। भक्त के लिए उपासना का अत्यधिक महत्व है, जहाँ पर भगवान और भक्त, आराधक और आराध्य में द्वैत होना परमावश्यक है, विना इस भेद के उपासना या आराधना संभव ही नहीं है। एक भक्त सगुण और साकार भगवान को ही अपना उपास्य मानकर उसकी पूजा-अर्चना करता है और उसके प्रति पूर्ण आत्म-समर्पण करता है। जो भगवान भक्त की प्रार्थना नहीं सुन सकता या उसकी सहायता नहीं कर सकता उसका भक्त के लिए कोई महत्व नहीं हो सकता। यही कारण है कि भक्त, साधक या आराधक भगवान में मानवीय गुणों को आरोपित करके उसे व्यक्तित्वपूर्ण और सर्वगुण सम्पन्न मान लेता है।धार्मिक दृष्टि से ब्रह्म को सगुण साकार, सविशेष तथा व्यक्तित्वपूर्ण माना गया है। इस सगुण ब्रह्म को ही भगवान कहा जाता है जो कि सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता है।

2.5 भगवान के विभिन्न नाम

भागवत पुराण में कहा गया है कि भगवान के विभिन्न नाम हैंIभगवान को विभिन्न नामों से पुकारा जाता है। जैसे- भगवान - विभिन्न गुणों और शक्तियों के स्वामी।

धाता - संसार का पालन करने वाला, पालनकर्ता।

ईश्वर - सर्वशक्तिमान, शासक।

परमात्मा - परम आत्मा।

परमेश्वर - परम ईश्वर, जो संसार का सृष्टिकर्ता, पालक और संहारक है।

विधाता - सृष्टि की रचना करने वाला, सृष्टिकर्ता।

2.6 भगवान् के अस्तित्व के लिए प्रमाण

1) **सृष्टिमूलक प्रमाण(Cosmological Argument)-** इसे विश्वमूलक युक्ति भी कहा जाता है, अंग्रेजी शब्द 'Cosmos' का अर्थ संसार या विश्व है। यह एक अनुभवमूलक युक्ति (Aposteriori Argument) है। विश्व की व्याख्या करने के निमित्त इस युक्ति में भगवान की सत्ता को प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है। विश्वमूलक प्रमाण भगवान के अस्तित्व के लिये दिये जाने वाले प्राचीनतम प्रमाणों में से एक है जिसका प्रयोग महान यूनानी दार्शनिक **प्लेटो** और **अरस्तू** ने किया है। सर्वप्रथम 'लाओज' और 'फिडरस' नामक पुस्तक में **प्लेटो** ने इस युक्ति का प्रयोग किया। **अरस्तू** ने **प्लेटो** से प्रेरणा लेकर गति के आधार भगवान को अप्रवर्तित प्रवर्तक (unmoved mover) सिद्ध किया। **सन्त थॉमस एकीनास अरस्तू** की युक्ति से प्रभावित हुये तथा उन्होंने इसी प्रकार विश्वमूलक प्रकार के पांच रूपों का उल्लेख किया। 'Summa Theologiae' नामक प्रसिद्ध ग्रन्थ में **सन्त थॉमस एक्वीनास** ने विश्वमूलक युक्ति की अत्यन्त विस्तारपूर्वक विवेचना की है। उनके द्वारा प्रस्तुत पांच रूपों में से तीन रूप अधिक प्रचलित होने के कारण विशेष महत्वपूर्ण हैं— इन्हें क्रमशः 'गति सम्बन्धी प्रमाण', 'आकस्मिकता सम्बन्धी प्रमाण और 'कारणता सम्बन्धी प्रमाण' कहा जाता है।

गतिमूलक तर्क का सर्वप्रथम प्रयोग महान यूनानी दार्शनिक **अरस्तू** ने किया। अरस्तू के अनुसार गति एक ऐसे पारमार्थिक स्रोत की ओर संकेत करती है जो समस्त गति का कारण, स्रोत या आधार है तथा जो स्वयं अप्रवर्तित रहते हुए सभी को गति प्रदान करता है (Metaphysics 999B) इस तर्क का प्रारंभ इस प्रकार होता है, विश्व में सर्वत्र गति, परिवर्तन और परिणाम है। गति स्वयं उत्पन्न नहीं हो सकती है क्योंकि गति का कोई न कोई कारण या स्रोत होता है। पुनः गति के उस स्रोत का भी कोई अन्य स्रोत होना चाहिए, इसी क्रम में आगे बढ़ने पर अनवस्था दोष आ जाता है। इसलिए अनन्त श्रृंखला के परिणामस्वरूप उत्पन्न होने वाले इस दोष से बचने के लिये हमें एक ऐसी सत्ता को स्वीकार करना पड़ता है जो समस्त गतिमान वस्तुओं की गति का आदि कारण है अर्थात् सर्वप्रथम गति प्रदान करने वाली वही सत्ता है। इसी सत्ता को भगवान कहा गया है जो अप्रवर्तित प्रवर्तक है। **अरस्तू** के अनुसार भगवान ही गति का मूल कारण है परन्तु वह स्वयं गतिहीन है। इसी प्रकार अरस्तू का अनुकरण करते हुए **सन्त एक्वीनास** तथा अन्य दार्शनिक भगवान के अस्तित्व को प्रमाणित करते हैं।

उपरोक्त युक्ति का विश्लेषण करने पर यह स्पष्ट होता है कि **एक्वीनास** के अनुसार / विश्व की समस्त वस्तुएं आकस्मिक या आपातिक हैं क्योंकि ये उत्पन्न होती हैं और विनष्ट हो जाती हैं। इन वस्तुओं का अस्तित्व अन्य वस्तुओं पर निर्भर होने के कारण इन्हें निरपेक्ष और स्वतन्त्र नहीं माना जा सकता है, ये सभी वस्तुएं सान्त, सीमित, सापेक्ष और सोपाधिक हैं। यदि सभी वस्तुएं विनाशशील हैं तो काल की अनन्त श्रृंखला में वे एक-एक करके विनष्ट हो जायेंगी और अन्त में शून्य बचेगा जबकि शून्य से किसी वस्तु की उत्पत्ति संभव नहीं है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि भगवान एक अनिवार्य सत्ता है जो अनादि और अनन्त है जो उत्पत्ति और विनाश से परे है। यह भगवान आत्मनिर्भर, स्वाश्रित और स्वयंभू है जो अन्य सभी आकस्मिक आपातिक और सोपाधिक वस्तुओं का अनिवार्य आश्रय और आधार है। भगवान अपने अस्तित्व के लिए किसी अन्य की अपेक्षा नहीं करता, वह निरपेक्ष और स्वतन्त्र है तथा विश्व की सभी वस्तुओं का कारण है।

सृष्टिमूलक प्रमाण का तीसरा रूप **कारणमूलक** तर्क है जिसके अन्तर्गत विश्व को कार्य और भगवान को इसका कारण या सृष्टिकर्ता मान लिया जाता है। यहाँ यह तर्क दिया जाता है कि कोई भी घटना अकारण घटित नहीं होती है अर्थात प्रत्येक घटना का कोई न कोई कारण अवश्य होता है। विश्व की जितनी घटनाएं हैं वे पूर्ववर्ती घटनाओं के कार्य हैं और स्वयं पूर्ववर्ती घटनाएं अपनी पूर्ववर्ती घटनाओं के और पुनः पूर्ववर्ती अपने पूर्व की घटनाओं के कार्य हैं अतः अनवस्था दोष से बचने के लिए हमें यह स्वीकार कर लेना चाहिए कि सभी घटनाओं का एक आदि कारण (First Cause) है जिसका अन्य कोई कारण नहीं है। इसी कारणरहित कारण (Uncaused Cause) को भगवान कहा गया है जो सभी कार्यों का कारण है किन्तु स्वयं जिसका कोई कारण नहीं है। समस्त सांसारिक पदार्थ उसके कार्य हैं किन्तु वह स्वयं किसी का कार्य नहीं है।

भारतीय दर्शन में न्याय दर्शन के **आचार्य उदयन** ने अपने ग्रन्थ '**न्याय कुसुमांजलि**' में भगवान की सत्ता को सिद्ध करने के लिए कारणमूलक तर्क का प्रयोग किया है। नैयायिकों के मतानुसार भगवान इस विश्व का उपादान कारण न होकर केवल निमित्त कारण है। नैययिकों ने दिक, काल, पंच महाभूत(आकाश,वायु,अग्नि,जल,पृथ्वी) आत्मा, मनस इन नौ शाश्वत द्रव्यों का उल्लेख किया है जो भगवान-विरचित न होकर शाश्वत द्रव्य है।

भगवान निमित्त कारण के रूप में विश्व का सृष्टिकर्ता है। इन विधारकों के अनुसार भगवान की सत्ता को स्वीकार किए बिना विश्व के अस्तित्व की संतोषजनक व्याख्या नहीं की जा सकती है।

2) **सत्तामूलक तर्क(Ontological Argument)-** सृष्टिमूलक तर्क के विपरीत सत्तामूलक तर्क एक प्रागानुभविक प्रमाण है। इसे प्रत्यय-सत्ता प्रमाण भी कहा जाता है क्योंकि इसमें भगवान के प्रत्यय के आधार पर भगवान की सत्ता को प्रमाणित किये जाने का प्रयास किया गया है।

उनकी धारणा है कि भगवान वह पूर्ण सत्ता है जिसके अनस्तित्व का विचार ही नहीं किया जा सकता है। पूर्ण सत्ता का तात्पर्य ऐसी सत्ता से है जिससे उच्चतर या वृहत्तर कोई अन्य सत्ता न हो। ऐसी सत्ता या तो मस्तिष्क मात्र में होगी या वास्तव में तथ्यपरक होगी। यदि ऐसी सत्ता केवल विचार मात्र है या मानसिक ही है, तो उसे पूर्ण सत्ता नहीं माना जा सकता। इस प्रकार पूर्ण सत्ता उसे माना जायेगा जो विचार और यथार्थ दोनों में सत् हो।

देकार्त के अनुसार जिस प्रकार त्रिभुज के ज्ञान में ही यह ज्ञान भी निहित है कि उसके तीनों कोणों का योग दो समकोण के बराबर होता है,उसी प्रकार भगवान की पूर्णता में यह भी निहित है कि उसका अपना अस्तित्व है। यदि भगवान में अस्तित्व का अभाव है तो उसे अपूर्ण कहा जायेगा। अतः भगवान की पूर्णता में ही उसका अस्तित्व समाविष्ट है।**देकार्त** ने सत्तामूलक युक्ति को एक अन्य रूप में भी अभिव्यक्त किया है— 'मेरी बुद्धि में पूर्ण (Perfect),अनन्त (Infinite) भगवान का विचार है। इस विचार या प्रत्यय का कोई न कोई कारण अवश्य होगा'। **देकार्त** के अनुसार हम अपूर्ण और सीमित प्राणी हैं इसलिए पूर्ण और अनन्त भगवान के प्रत्यय का कारण नहीं हो सकते हैं। अतः इस धारणा का अन्य कोई कारण नहीं है अपितु भगवान स्वयं हैं जो पूर्ण एवं अनन्त है। परिणामस्वरूप भगवान का अस्तित्व असन्दिग्ध रूप से माना जा सकता है।

3) **प्रयोजनमूलक प्रमाण(Teleological Argument)-** प्रयोजनमूलक प्रमाण के अन्तर्गत विश्व में व्याप्त प्रयोजन, उद्देश्य, सुसंगति, व्यवस्था और अनुरूपता के आधार पर भगवान के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास किया गया हैI ऑग्ल भाषा में इसे 'Teleological Argument' कहा जाता है। 'Teleology' यूनानी शब्द 'Teleolos' से निःसृत हुआ है जिसका अर्थ है 'उद्देश्य'I इस प्रमाण का आधार यही है कि यह विश्व प्रयोजनविहीन या निरुद्देश्य नहीं है तथा इस विश्व में एक व्यवस्था है जो अपने आप स्थापित नहीं है अपितु इस व्यवस्था का कोई व्यवस्थापक अवश्य है जो कि चेतन एवं बौद्धिक सत्ता है। अनुभव पर आधारित यह युक्ति भगवान को व्यवस्थापक और योजनाकार के रूप में निदर्शित करती है।यहाँ जिस तथ्य को इंगित किया गया है वह यह है कि यह विश्व किसी बौद्धिक सत्ता द्वारा नियंत्रित और नियमित किया जा रहा है और वह बौद्धिक सत्ता **'Summa Theologica'** नामक ग्रन्थ में महान मध्यकालीन विचारक **सन्त थॉमस एकीनास** ने भी इस युक्ति का प्रयोग किया। उनका मन्तव्य है कि विश्व में जो प्राकृतिक तत्व हैं जिनमें ज्ञान का अभाव है' ,दूसरों के उद्देश्य की पूर्ति करते हैं। जिन तत्वों में ज्ञान का अभाव है, वे तब तक किसी एक निश्चित उद्देश्य या प्रयोजन की सिद्धि नहीं कर सकते जब तक कि उसे ज्ञानयुक्त और बुद्धिसम्पन्न कोई तत्व निर्देशित, नियंत्रित या नियमित न करे। इसलिए कोई बौद्धिक सत्ता अस्तित्वमान है जो समस्त प्राकृतिक वस्तुओं

को निर्दिष्ट कर रही है और इस शक्ति को हम भगवान कहते हैं।

प्रसिद्ध नैयायिक **जयन्त भट्ट** और **महान अद्वैत वेदान्ती शंकराचार्य** ने प्रयोजनमूलक युक्ति का समर्थन किया है। विश्व में व्याप्त व्यवस्था और प्रयोजन के आधार पर ही **जयन्त भट्ट** ने भगवान की सत्ता को सिद्ध किया है। सांसारिक वस्तुओं की उत्पत्ति न तो आकस्मिक है और न ही संयोगवश उसी प्रकार ब्रह्माण्ड की रचना भी सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान भगवान द्वारा की गई है क्योंकि उसमें भी व्यवस्था और प्रयोजन विद्यमान है।जहाँ तक **शंकराचार्य** के मत का प्रश्न है, पारमार्थिक दृष्टि से तो उन्होंने निर्गुण, निराकार, और निविशेष ब्रह्म की वास्तविक सत्ता को स्वीकार किया है। परन्तु व्यावहारिक दृष्टि से उन्होंने जगत की सत्ता और इसके कारण के रूप में भगवान की सत्ता को स्वीकार किया है। भगवान के अस्तित्व के लिए सृष्टिमूलक और नैतिक तर्कों के साथ-साथ प्रयोजन मूलक तर्क का भी प्रतिपादन किया है। विश्व में व्याप्त व्यवस्था, सुसंगति और प्रयोजन के आधार पर उन्होंने भी बुद्धिमान भगवान की सत्ता को स्वीकार किया है। भगवान ने माया के द्वारा इस व्यवस्थित एवं प्रयोजनपूर्ण जगत् की रचना की है। बिना भगवान के अस्तित्व को स्वीकार किये हम इस व्यावहारिक जगत की सत्ता की व्याख्या नहीं कर सकते।

4) **नैतिक तर्क(Moral Argument)-** नीतिशास्त्र के अन्तर्गत **कान्ट** ने आत्मा की अमरता (Immortality of Soul), भगवान के अस्तित्व (Existence of God) और संकल्प की स्वतन्त्रता (Freedom of will) को नैतिकता की पूर्वमान्यताओं (Postulates of Morality) के रूप में स्वीकार किया है।भगवान को नैतिक न्यायाधीश की संज्ञा दी है। यदि हम भगवान के अस्तित्व को स्वीकार करें और यह मानें कि मानव कर्तव्य भगवान की आज्ञाएं हैं तो हमें कर्तव्य पालन में प्रेरणा मिलती है।

प्रायः हम देखते हैं कि सदाचारी व्यक्ति दुखी रहता है, जबकि दुराचारी व्यक्ति सदैव ही सुखी। क्या यह न्याय है? किंतु फिर भी सदाचारी व्यक्ति के मन में यह दृढ़ आस्था रहती है कि भगवान एक न एक दिन अवश्य ही न्याय करेगा और सदाचारियों को पुरस्कृत और दुराचारियों को दंडित करेगा।अतः एक न एक दिन ऐसा आएगा जब व्यक्ति के कर्मों का मूल्यांकन होगा। इस प्रकार न्याय की स्थापना के लिए भगवान का होना आवश्यक है। अन्यथा नैतिक नियमों का कोई अर्थ नहीं रह जाएगा। भारतीय परंपरा में भगवान को इसीलिए कर्माध्यक्ष या न्यायाधीश के रूप में स्वीकार किया गया है जो शुभ - अशुभ कर्मों के अनुसार दुष्टों को दंडित और सदाचारियों को पुरस्कृत करता है। **गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं कि " परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्।**

धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।। "4/8

अर्थात् दुष्टों के विनाश तथा साधु पुरूषों को मुक्ति दिलाने के लिए और धर्म की स्थापना के लिए मैं प्रत्येक युग में प्रकट हुआ करता हूँ। इस प्रकार नैतिक मूल्यों के रक्षा के लिए भगवान का होना अनिवार्य है। ऋग्वेद में भी ऋत को माना गया है जो संपूर्ण नैतिक और भौतिक व्यवस्थाओं का आधार है, और ऋत का अधिष्ठाता स्वयं भगवान है। अतः भगवान का अस्तित्व सिद्ध होता है। न्याय दर्शन में भी अदृष्ट को माना गया है जो हमारे कर्मों के अनुसार हमें उचित- अनुचित कर्मफल प्रदान करता है। परन्तु अदृष्ट स्वयं अचेतन है। अतः अदृष्ट में गति के लिए सर्वज्ञ भगवान के निर्देश एवं संचालन की आवश्यकता है।

इस प्रकार अदृष्ट के संचालन हेतु भगवान की सत्ता सिद्ध होती है।

5) **धार्मिक अनुभूति के आधार पर भगवान के अस्तित्व का प्रमाण** (**Argument for the existence of God based on 'Religious Experience**)- धर्मशास्त्र और धर्म में धार्मिक अनुभूति का विशिष्ट स्थान है और इसका प्रयोग व्यापक अर्थों में किया जाता है। इसके अन्तर्गत रहस्यानुभूति, श्रुति प्रकाश तथा अयौक्तिक अनुभूति को भी समाविष्ट किया जाता है। भगवान की सत्ता को प्रमाणित करने के लिए अनेक धार्मिकों एवं भगवानवादी दार्शनिकों ने धार्मिक अनुभूति का आश्रय लिया है। **सन्त प्लोटिनस** से लेकर **विलियम जेम्स** और **डब्लू. टी. स्टेस** तक ईश्वरवादी दार्शनिकों, रहस्यवादियों, सन्तों, पैगम्बरों की एक लम्बी श्रृंखला है जिन्होंने विशिष्ट धार्मिक अनुभूति, अलौकिक अन्तः अनुभूति और दिव्य अनुभूति के आधार पर भगवान की सत्ता को प्रदर्शित किया है। समकालीन धार्मिकों एवं विचारकों में भी **डब्लू. आर. इञ्ज, इब्लिन अन्डरहिल,सफल जोन्स, हेनरी वर्गसां, रुडोल्फ ऑटो, जॉन बेली और रिचर्ड नेभ्यु** आदि दार्शनिको ने धार्मिक अनुभूति के आधार पर भगवान के अस्तित्व को प्रदर्शित करने का प्रयास किया है।

अनेक धार्मिकों ने रहस्यानुभूति (Mystical experience) को धार्मिक अनुभूति की चरम परिणति मानते हुए इसे भगवान की साक्षात् अनुभूति का प्रबल साधन माना है। रूढ़िवादी ईसाई एवं इस्लाम धर्म के समर्थक इस प्रकार की अनुभूति का समर्थन नहीं करते क्योंकि इसमें भक्त भगवान के साथ आत्मसात करता हुआ माना जाता है। रहस्यवादी यह मानते हैं कि भक्त भगवान में इतना निमग्न हो जाता है कि वह भगवान में स्वयं को विलीन समझता है। स्मरणीय है कि ईश्वरवादी भगवान को पूर्ण, परम पवित्र, मानवेतर, विश्वेतर, और शुभ मानता है कि किसी भी मनुष्य के भगवान के साथ साक्षात्कार को सिद्धान्ततः स्वीकार ही नहीं कर सकता है।इसके सबके बावजूद कुछ धार्मिकों जैसे- **डीन इञ्ज, इब्लिन अण्डरहिल, रुफस** इत्यादि ने रहस्यात्मक अनुभूति को भगवान के साक्षात्कार का सशक्त साधन माना है। अधिकांश ईश्वरवादी धर्मदार्शनिकों ने रहस्यानुभूति के माध्यम से भगवान के साक्षात्कार को भगवान की दिव्य अनुभूति के रूप में चिन्तित किया है जो अवर्णनीय, अवक्तव्य और अनिर्वचनीय है क्योंकि इस दिव्य अनुभूति को लौकिक साधारण भाषा के माध्यम से व्यक्त नहीं किया जा सकता है।

2.7 हिन्दू धर्म-दर्शन में भगवान

1) **हिन्दू धर्म की आधारभूत मान्यताएँ :** हिन्दू-धर्म का मूलाधार वेदों की प्रामाणिकता में विश्वास करना है। भगवान, आत्मा या मोक्ष सम्बन्धी किसी अवधारणा में विश्वास करना हिन्दू धर्म की आधारभूत विशेषता नहीं है अपितु वेदों में श्रद्धा रखना तथा उनकी प्रामाणिकता में विश्वास करना हिन्दू धर्म के लिए परमावश्यक हैं। बौद्ध और जैन ,सांख्य और मीमांसा जैसे भारतीय दार्शनिक सम्प्रदाय भगवान के अस्तित्व में विश्वास नहीं करते फिर भी इन्हें हिन्दू-धर्म का महत्वपूर्ण अंग माना जाता है। भगवान की धारणा, आत्मा की अमरता, सृष्टि सम्बन्धी धारणा, पुर्नजन्म एवं आवागमन-चक्र, कर्मवाद, वर्णाश्रम-विधान आदि हिन्दू धर्म की प्रमुख मान्यताएं हैं-

भगवान - भगवान-विचार हिन्दू-धर्म का केन्द्र बिन्दु है। हिन्दू धर्म में भगवान को

सृष्टिकर्ता, पालनकर्ता और संहारकर्ता माना गया है जिन्हें ब्रह्मा, विष्णु एवं महेश के रूप में स्वीकार किया गया है। भगवान कर्म का नियामक एवं धर्म का संस्थापक है। अवतारवाद में विश्वास इस धर्म का विशिष्ट लक्षण है। ऐसा माना गया है कि जब पृथ्वी पर धर्म का नाश होने लगता है तो भगवान का पृथ्वी पर अवतार होता है। जो विश्व में व्याप्त अधर्म एवं पाप का संहार करते हैं तथा धर्म की रक्षा करते हैं। राम, कृष्ण, परशुराम आदि अवतार के रूप में स्वीकार किए गये हैं।

हिन्दू-धर्म में भगवान को विश्वव्यापी एवं विश्वातीत दोनों माना गया है। भगवान इस विश्व में व्याप्त रहने के कारण विश्व का उपादान कारण है। इसी प्रकार विश्व से अलग रहने के कारण विश्व का निमित्त कारण भी है। भगवान को पूर्ण, सर्वशक्तिमान, पूर्ण स्वतन्त्र और पूर्ण सर्वज्ञ माना गया है। हिन्दू धर्म में भगवान को अनन्त गुणों से युक्त माना गया है जिनमें से छः गुण अत्यधिक प्रधान हैं - आधिपत्य (Majesty), वीर्य (Almighty), यश (Allglorious), श्री (Infinitely beautiful), ज्ञान (Knowledge) एवं वैराग्य (Detachment)। हिन्दू-धर्म में भगवान को नैतिक व्यवस्थापक (Moral Governor) कहा गया है जो हमारे शुभ तथा अशुभ कर्मों का निर्णय करता है तथा सुख एवं दुःख प्रदान करता है। हिन्दू-धर्म में भगवान को दयालु और कृपालु माना गया है जो अपने भक्तों का उद्धार करता है और धार्मिक आत्माओं की रक्षा करता है।

2) **गीता में भगवान-** गीता में भगवान के सगुण रूप का विवेचन किया गया है। यह शिव, विष्णु आदि नामों से जाना जाता है। गीता में भगवान को अनंत एवं सांत दोनों से परे माना गया है। वह संसार का जनक तथा कारण है और सभी प्राणियों में शक्ति के रूप में व्याप्त है। वह सभी वस्तुओं का आधार है। और सबमें जीवन का संचार करता है। वह अनादि, अनंत, कूटस्थ, नित्य और सर्वगुणसम्पन्न है। गीता में भगवान को एक सर्वोपरि सत्ता, सर्वोच्च आत्मा या परमात्मा माना गया है जो तीनों लोक में व्याप्त है और उसे धारण करता है।

गीता में भगवान के दो स्वरूपों का विवेचन प्राप्त होता है- परा और अपरा।भगवान का परा रूप उसकी उच्च प्रकृति हैयह उसकी चेतन प्रकृति है। भगवान की परा प्रकृति को क्षेत्रज्ञ या अक्षर जीव भी कहते हैंभगवान का अपरा स्वरूप उसकी निम्न प्रकृति है। यह उसकी अचेतन प्रकृति है। भगवान के अपरा रूप को क्षर पुरुष या क्षेत्र भी कहते हैं। यह स्वरूप में भौतिक है। भगवान की अपरा प्रकृति आठ प्रकार की है। -पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहंकार।

गीता भगवान के व्यक्त और अव्यक्त रूप में दो रूप मानती है। प्रकृति और पुरुष ईश्वर के व्यक्त रूप हैं। अव्यक्त रूप में भगवान शुद्ध, निर्गुण, अनादि और निरवयव माना गया है। गीता के अनुसार भगवान का अव्यक्त रूप उसका श्रेष्ठ रूप है।

गीता में ईश्वर के व्यक्त एवं अव्यक्त रूप के अतिरिक्त उसके विराट् स्वरूप का वर्णन प्राप्त होता है। इसके विराट स्वरूप का न आदि है, न अंत, और न मध्य है। गीता का भगवान अजन्मा है। वह समस्त भूतों की आत्मा है और उन पर शासन करता है। गीता भगवान के अवतारों में भी विश्वास करता है। उसका ईश्वर अजन्मा होते हुए भी जन्म लेता है। जब विश्व में नैतिक एवं धार्मिक मूल्यों का पतन होता है, अनैतिक और अधार्मिक मूल्यों में वृद्धि होती है तब प्रत्येक युग में धर्म की स्थापना के लिए, सज्जनों की रक्षा और दुर्जनों के

विनाश के लिए भगवान जन्म लेता है। वह अकर्ता होकर भी कार्य करता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण स्पष्ट कहते हैं कि 'यद्यपि तीनों लोको मे मेरा कोई कर्तव्य शेष नहीं है और न कोई अप्राप्त वस्तु प्राप्त करना है, तथापि मैं अपना कर्म करता हूँ।' उसके कर्म को उसकी लीला कहते हैं। इस प्रकार गीता का भगवान एक ओर अपने को संसार या प्रकृति के रूप में और दूसरी ओर चेतन बुद्धि या जीव के रूप में व्यक्त करता है। संसार की समस्त वस्तुओं में ईश्वर विद्यमान है। वह संसार में व्याप्त भी है और उससे परे भी है।

भगवान धर्म का संस्थापक और रक्षक है। लोकसंग्रह करता है, सभी मनुष्यों को कर्तव्य पथ पर लगाता है। वह कृपालु है और अपने भक्तों की रक्षा करता है। भक्तों की पुकार सुनता है और उनको अपनी शरण में लेता है। गीता में भगवान को सृष्टिकर्ता तथा जगत का मूल कारण कहा गया है।

3) **न्याय दर्शन में भगवान-** न्याय दर्शन में प्रमाणमीमांसा के बाद दूसरा सर्वाधिक महत्वपूर्ण पक्ष ईश्वरमीमांसा है। न्याय दर्शन में तर्क के आधार पर भगवान की सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। न्याय दर्शन का भगवान जगत का सृष्टा, पालक और संहारक है। वह शून्य से जगत की सृष्टि न कर के नित्य परमाणुओं, दिक्, काल, आकाश, मन तथा आत्माओं से उसकी सृष्टि करता है। भगवान इस संसार का निमित्त कारण है। वह कुम्भकार के जैसे नित्य परमाणुओं से उसकी सृष्टि करता है। वह जीवों के कर्मों का प्रयोजक भी है। वह संसार के सभी प्राणियों का कर्मफलदाता और उनके सुख दुःख का निर्णायक तथा दयालु है। न्याय दर्शन में भगवान को शरीरधारी माना गया है जो सत्, चित्त और आनंद से परिपूर्ण है। वह सर्वज्ञ और नित्य है। परमानन्द का भंडार है। भगवान में वैसे तो अंनत गुण हैं लेकिन छह गुण अत्यंत महत्वपूर्ण है जिसे षडैश्वर्य कहते हैं। ये छह गुण हैं- आधिपत्य, वीर्य, यश, श्री, ज्ञान एवं वैराग्य।

न्याय दर्शन में प्रमाणों के आधार पर भगवान के अस्तित्व को सिद्ध करने का प्रयास किया गया है। न्याय दर्शन में भगवान के अस्तित्व को सिद्ध करने के लिए निम्नलिखित नौ तर्क दिये जाते हैं–

पहला, जगत् एक कार्य है। इसका एक निमित्त कारण होना चाहिए जो कोई चेतन तत्व ही हो सकता है। मनुष्य की शक्ति और ज्ञान सीमित होने से वह जगत् का कारण नहीं हो सकता है। अतः भगवान इस जगत रूपी कार्य का कारण है।

दूसरा, न्याय दर्शन के अनुसार यह जगत् एक आयोजन है। यह जगत जिन तत्वों से मिलकर बना है उनमें अनंत आयोजन देखा जाता है। यह आयोजन एक बुद्धि संपन्न कर्ता की अपेक्षा रखता है। चूंकि सृष्टि के आरंभ होने के एकमात्र भगवान ही बुद्धि संपन्न प्राणी के रूप में अस्तित्व में था। अतः यह आयोजन भगवान की सत्ता को सिद्ध करती है।

तीसरा, धारण से भगवान का अस्तित्व सिद्ध होता है। धारण से तात्पर्य है कि यह संसार भगवान की इच्छा से ही स्थित है। भगवान ने इस अद्भुत जगत को धारण किया हुआ है।

चौथा, यह संसार एक व्यवहार है। प्रारम्भ में जीव संसार के व्यवहार से अपरिचित होते हैं। उस समय जीवों को संसार के व्यवहार का ज्ञान कराने के लिए एक चेतन आदि शिक्षक की आवश्यकता होती है। वह आदि शिक्षक भगवान ही हो सकता है।

पांचवा, न्याय दर्शन वेद की प्रामाणिकता के आधार पर भगवान की सत्ता को सिद्ध करता है। वेद सत्य एवं अखंड ज्ञान है। अतः इसकी प्रामाणिकता का कारण कोई चेतन तत्व है। यह चेतन तत्व जीव नहीं हो सकता है क्योंकि उसका ज्ञान सीमित है। अतः असीमित भगवान ही वेद की प्रामाणिकता का कारण है।

छठां, श्रुतियां भी भगवान की सत्ता के लिए प्रमाण हैं। विभिन्न श्रुतियों, स्मृति ग्रंथ में भगवान के सृष्टिकर्ता, पालक, संहारक और संसार के नैतिक संचालक होने का प्रमाण मिलता है।

सातवां, वेद प्रामाणिक ग्रंथ हैं। वेदों के विभिन्न भाग हैं तब भी उनमें अभिप्राय की एकता है।अतः वेदों का रचयिता कोई सर्वज्ञ ही हो सकता है। अतः वेदों का रचयिता भगवान हैं।

आठवां, न्याय वैशेषिक दर्शन परमाणुवादी हैं। उनके अनुसार परमाणुओं से सबसे पहले द्वयणुक उत्पन्न होते हैं। द्वयणुक का परिमाण परमाणुगत द्वित्व संख्या से उत्पन्न होता है। किन्तु इस द्वित्व संख्या की उत्पत्ति अपेक्षा बुद्धि से ही हो सकती है। यह अपेक्षा बुद्धि भगवान की ही हो सकती है क्योंकि सृष्टि के आरंभ में एकमात्र भगवान ही अपेक्षा बुद्धि वाला तत्व था।

नौवां, न्याय दर्शन अदृष्ट से भी भगवान की सत्ता को सिद्ध करता है। धर्म एवं अधर्म अथवा पुण्य और पाप के संग्रह को अदृष्ट कहते हैं जिससे कर्मफल उत्पन्न होता है। सभी जीवों को अदृष्ट का फल मिलता है। किंतु अदृष्ट जड़ है। अतः उसे गतिशील बनाने के लिए एक चेतन तत्व अवश्य होना चाहिए। यह चेतन तत्व भगवान है।

4) **योग दर्शन में भगवान**- महर्षि पतंजलि ने भगवान को पुरुष विशेष के रूप में माना है। महर्षि पतंजलि ने भगवान को स्वीकार करने के दो कारण बताये हैं- प्रथम, चित्त की एकाग्रता में भगवान का ध्यान उपयोगी है। द्वितीय, सृष्टि के पुनः प्रारंभ होने पर जीव को मुक्ति का उपदेश केवल ऐसी सत्ता द्वारा संभव माना गया है जो सर्वदा मुक्त हो और सर्वज्ञ हो। महर्षि पतंजलि भगवान के के सृष्टिकर्ता, नियामक एवं संहारक रूप में वर्णन नहीं करते किंतु योगसूत्र के भाष्यकारों ने सृष्टि के उत्पत्ति एवं विकास के नियमता के आधार रूप में भगवान की सत्ता को सिद्ध करने का प्रयास किया है। योग दर्शन में भगवान अविद्या, अस्मिता, आदि क्लेशों से, कर्मों के पाप-पुण्य आदि फलों से तथा कर्मों के संस्कारों से अप्रभावित पुरुष विशेष भगवान है। उसमें अपूर्णता का लेशमात्र भी नहीं है। वह कर्म विधान से ऊपर है। वह मुक्त पुरूषों से भी भिन्न है क्योंकि वह सदैव स्वतंत्र और मुक्त है। वह सर्वज्ञ और अपनी इच्छा मात्र से संपूर्ण सृष्टि का संचालन करता है। वह प्राचीन ऋषियों का गुरु भी है। योगदर्शन का भगवान सत्य का प्रथम उपदेशक है। प्रकृति के विकास का मार्गदर्शक है। वह सदैव इस बात के लिए प्रयासरत रहता है कि प्रकृति का विकास पुरुष के प्रयोजन की सिद्धि करे। भगवान ज्ञानशक्ति, इच्छाशक्ति एवं क्रियाशक्ति से युक्त है। वह करूणामय है। यद्यपि उसमें किसी प्रकार की इच्छा नहीं है तथापि वह सृष्टि के आरंभ के समय सभी प्राणियों के कल्याण के लिए उपदेश देता है। उसके समान अन्य कोई नहीं है।

योगदर्शन में भगवान के अस्तित्व के लिए प्रमाण भी देता है। उसके लिए सबसे बड़ा प्रमाण आगमशास्त्र है क्योंकि सभी आगमशास्त्र भगवान के साक्षात्कार को जीवन का

प्रमुख लक्ष्य मानते हैं और भगवान को आदि सत्ता के रूप में देखते हैं।

संसार में भगवान के लिए दूसरा प्रमाण यह है कि संसार में सभी वस्तुओं के न्यूनाधिक परिमाण है। परिमाण की एक अल्पतम और अधिकतम सीमा है। जैसे अणु वस्तुओं का अल्पतम परिमाण और आकाश अधिकतम परिमाण है। अतः एक ऐसी सत्ता होनी चाहिए जिससे अधिक और अल्प और कोई सत्ता न हो। ऐसा परमपुरुष सत्ता भगवान ही है।

5) **विशिष्टाद्वैतवाद में भगवान-** रामानुज का भगवान भागवत धर्म के अनुरूप है। रामानुज भी सर्वोच्च तत्व भगवान को ब्रह्म कहते हैं।वह सगुण, सविशेष और व्यक्तित्वयुक्त है। वह शुभ गुणों से युक्त है। उपनिषदों में उसे सत्यं, ज्ञानम् और अनन्तम् कहा गया है। रामानुज के अनुसार सत्य, ज्ञान और आनंद भगवान के गुण हैं। स्वरूप नहीं। ब्रह्म को निर्गुण कहने का अर्थ केवल इतना है कि उसमें सांत एवं मिथ्या गुण नहीं हैं। भगवान का ऐश्वर्य इतना महान है कि सीमित बुद्धि वाले मानवीय मस्तिष्क के बाहर है।

रामानुज भगवान या ब्रह्म के दो रूप मानते हैं- कारण ब्रह्म और कार्य ब्रह्म। कारण ब्रह्म सृष्टि के पूर्व की अवस्था है। इस अवस्था में ब्रह्म में चित् अर्थात् जीव और अचित् अर्थात् प्रकृति सूक्ष्म रूप से विद्यमान रहता है। यही भगवान या ब्रह्म की कारणावस्था है। भगवान की कार्यावस्था में भगवान में कोई परिवर्तन नहीं होता है। परिवर्तन केवल उसके अंश चित् और अचित् में होता है। ये दोनों अंश स्थूल होकर नामरूप धारण कर लेते हैं। इस प्रकार स्थूल चिदचिद्विशिष्ट ब्रह्म कार्य ब्रह्म है। वास्तव में भगवान ही इस संसार में सब रूपों में विद्यमान है।

रामानुज भागवत धर्म के अनुसार भगवान को विष्णु कहते हैं। वे विष्णु या ब्रह्म के पांच रूपों की चर्चा करते हैं- परा, व्यूहरूप, विभवरूप, अन्तर्यामी रूप और अर्चारूप। परा ब्रह्म की सर्वोच्च अवस्था है। वह इस रूप में नारायण या वासुदेव हैं और बैकुंठ में निवास करते हैं। वहाँ देवता और मुक्त आत्माएं उनकी सेवा में रहते हैं। वह बैकुंठ में शेषनाग पर बैठे हैं और उनकी धर्मपत्नी लक्ष्मी उन्हें सहारा दिये हैं। भगवान न्याय के प्रतीक हैं और लक्ष्मी दया की। इस प्रकार ये दोनों गुण ब्रह्म में एक साथ संयुक्त रहते हैं। भगवान छह प्रकार की पूर्णताएं हैं- ज्ञान, शक्ति, बल, प्रभुत्व, पराक्रम और प्रतिभा।

व्यूह वे आकृतियाँ हैं जिन्हें सर्वोच्च ब्रह्म अपने भक्तों पर दया दिखाने के लिए धारण करते हैं। व्यूह रूप चतुर्विध है- वासुदेव, संकर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध। व्यूह रूप में वासुदेव पर वासुदेव का रूपांतर है। वासुदेव व्यूह रूप में जीवात्माओं(संकर्षण), मनों(प्रद्युम्न) और अहंभाव (अनिरुद्ध) पर शासन करते हैं। विभव रूप भगवान के अवतार हैं। राम, कृष्ण आदि का अवतार भगवान का विभव रूप है। अन्तर्यामी रूप में वह सभी जीवों में स्थित है। वह योग और तप द्वारा ध्यान में आता है। भगवान प्रतिमादि रूप में अर्चारूप है और अपनी स्थिति का भान कराता है।

इस प्रकार रामानुज का भगवान व्यक्तित्वयुक्त, सगुण है। वह पापियों को दंड देता है और दीन दुखियों पर दया करता है। लोक उपकार उसका आवश्यक गुण है। सत्, चित्, आनंद भगवान का गुण है। भगवान ने करूणा से प्रेरित होकर जगत की रचना की और धार्मिक नियम बनायें। वह भक्तों के आराधना और उपासना का विषय है।

सिख-धर्म में भगवान-विचार (Concept of God in sikha)- सिख धर्म एक ईश्वरवादी धर्म है तथा भगवान को परमतत्व के रूप में स्वीकार करता है। सिख धर्म में एकेश्वरवाद को प्रतिष्ठित किया गया है। यह अनेकेश्वरवाद का विरोधी है। गुरूनानक का कथन है, भगवान सिर्फ एक है जिसका नाम सत्य है, वह स्रष्टा, भय और शत्रु भावना से शून्य है। वह अमर, अजन्मा, महान् और दयालु है।" जिस प्रकार कुरान और उपनिषद में भगवान की एकता पर बल दिया गया है, उसी प्रकार सिख धर्म में भगवान की एकता पर बल दिया गया है। सिख धर्म निर्गुण और सगुण दोनों ही प्रकार के भगवान का समर्थन करता है परन्तु अवतारवाद का समर्थन नहीं करता। भगवान एक ऐसा तत्त्व है जिसे प्रेम, श्रद्धा और आत्मसमर्पण के द्वारा अपनाया जा सकता है। भगवान में विलीन होना मानवीय जीवन का लक्ष्य होना चाहिए।

सिख धर्म में भगवान को सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ माना गया है। भगवान सर्वव्यापी है। गुरूनानक का कथन है, "भगवान प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है। वह प्रत्येक हृदय में निवास करता है। यद्यपि वह प्रत्येक वस्तु में व्याप्त है फिर भी वह प्रत्येक वस्तु से पृथक है। यद्यपि भगवान व्यकित्वपूर्ण है परन्तु उसे मानवीय प्रतिमा के रूप में नहीं जाना जा सकता है। गुरुदास ने भगवान की चर्चा करते हुए कहा है, "वह निरंकार अनूठा, अद्भुत और इन्द्रियातीत है। भगवान, अवर्णनीय और अपरिभाषेय है। गुरु नानक ने कहा है", उस एक के सम्बन्ध में विचार करो जो प्रत्येक वस्तु में है।" गुरू नानक ने एक भगवान व्याप्त के अनेक रूपों का समर्थन किया है। गुरू ग्रन्थ साहब में भगवान को अल्लाह, खुदा, ब्रह्म, परमब्रह्म, परमेश्वर, हरि, राम, गोविन्द और नारायण के नाम से सम्बोधित किया गया है। इस प्रकार का मत हिन्दू धर्म और इस्लाम के समन्वय का प्रयास है। गुरू नानक द्वारा जुप जी (जप जी) सबसे मुख्य भजन के रूप में प्रतिष्ठित किया गया है। इसे ही प्रतिदिन प्रातःकाल गाया जाता है और जिसे सिख धर्म का कुंजी भवन और ज्ञान समझा जाता है। इस कुंजी की प्रथम पंक्ति में ही भगवान के प्रत्यय को व्यक्त किया गया है। (एक) ओंकार सत्नाम करता पुरुष निरभव (निर्भय) निरवैर अकाल मूरत अजूनी (अजन्मा) सैभंग (स्वयंभू) गुरु प्रसाद ।'

गुरू नानक कर्मवाद और पुर्नजन्म दोनों को ही स्वीकार करते हैं। बिना पूर्वजन्म के संस्कार के कुछ प्राप्त नहीं हो सकता है। गुरु नानक के अनुसार पुर्नजन्म और मुक्ति दोनों भगवान की इच्छा पर निर्भर करते हैं। इस प्रकार गीता की ही तरह सिख धर्म में भगवान को कर्म-नियम का संचालक भी माना गया है। गुरू ग्रंथ साहब में भगवान को निराकार, आदि पुरुष, अकालपुरुष, सत् पुरुष तथा कर्त्ता पुरुषं कहा गया है। वाहे गुरू, वाहे गुरू (भगवान) को आदि, मूल, शुद्ध, अनादि, अविनाशी कहा गया है। इसी प्रकार भगवान को सगुण मानते में कहा गया है : हुए उसे ब्रह्मा, विष्णु और शिव कहा गया है। **गुरू ग्रन्थ साहब मे कहा गया है :निर्गुण और सगुण एकI**

सरगुन (सगुण) निरगुन थापैनाओ,
दुह मिलि एकै कीनो थाओ (ग्र. साह. 347)

2.8 विश्व के विभिन्न धर्मों में भगवान

2.8.1 ईसाई धर्म मे भगवान

ईसाई धर्म में भगवान परमसत्ता है। भगवान एक, सर्वशक्तिमान और सर्वज्ञ है। भगवान व्यक्तित्वपूर्ण है। वह नैतिक दृष्टि से पूर्ण है। अनन्त दृष्टि, अनन्त ज्ञान, करुणा आदि ऐश्वयों से वह सम्पृक्त है। भगवान न्यायी, परोपकारी, परमपवित्र, स्वर्ग और पृथ्वी का स्वामी तथा विश्व का संचालक है। वह मनुष्य के कर्मो का निर्णायक है। भगवान विश्वातीत और विश्वव्यापी है। ईसाई धर्म में भगवान को प्रेममय माना गया है जो भक्तों और उपासकों से प्रेम की अपेक्षा करता है। भगवान अपने भक्तों को कृपा, अनुग्रह और अनुराग प्रदान करता है। भगवान अशुभ कार्य करने वाले तथा अविश्वासी लोगों को प्यार नहीं करता है। ईसाई धर्म अपने पड़ोसियों से प्रेम करने की शिक्षा देता है तथा आस्थावान व्यक्तियों से प्रेम करता है। ईसाई धर्म में भगवान को क्षमाशील माना गया है जो पापी व्यक्तियों का उद्धार करता है। जो पापी व्यक्ति अपने पाप का प्रायश्चित कर लेता है उसे भगवान क्षमा प्रदान करता है। ईसा ने शूली पर चढ़ते समय शान्त भाव से कहा, "भगवान इनको क्षमा करना, ये बेचारे नहीं जानते कि क्या कर रहे हैं।' ईसा की यह वाणी विश्व इतिहास में अपूर्व है।

ईसाई धर्म में भगवान को 'पिता' की संज्ञा दी गई है। भगवान उस पिता की तरह है जो अपने बालकों के अपराधों को क्षमा करने के लिए तत्पर रहता है।भगवान के लिए 'The Father', 'O Father', 'My Father', 'Your Father', 'Our Father' इत्यादि भिन्न-भिन्न रूप में व्यक्त किया गया है। भगवान को पिता के रूप में स्वीकार करके ईसाई धर्म में भ्रातृ भाव का विकास करने का प्रयास किया गया है। जो पिता को प्यार करता है वह उनके बालकों के प्रति भी अनुराग रखता है। भगवान के प्रति प्रेम अभिव्यक्त करके मनुष्य संसार के अन्य व्यक्तियों के प्रति भी प्रेम अभिव्यक्त करने को तत्पर हो जाता है।

भगवानत्व को प्राप्त करने वाले ईसा भगवान-प्रेमोन्मत्त थे तथा भगवान की सत्ता का सतत अनुभव करते थे। उन्हें अलौकिक अद्भुत शक्ति प्राप्त थी जिसका वे जनकल्याण के लिए प्रदर्शन करते थे। ईसा ने भगवान को उस रूप में प्रकाशित किया था जिस रूप में भगवान मानव के लिए अपेक्षित था। वे स्वयं को भगवान के पुत्र के रूप में सम्बोधित करते थे। ईसा मनुष्य जाति के उद्धारक थे तथा भगवान और मनुष्य के समन्वय के प्रतीक थे। सन्त पाल ने ईसा को अविनाशी जीव बताया है जो जन्म के पूर्व भी थे और मृत्योपरान्त भी जीवित थे। ईसा,उनके पिता अर्थात् परमेश्वर और उनकी पवित्र आत्मा (God the Father, God the son and God the Holy Spirit) एक ही है।ईसा भगवान के प्रबल प्रतीक हैं जो भगवान के स्वरूप पर प्रकाश डालते हैं और जब भक्त भगवान को क्षमाशील, उद्धारक और परिशोधक प्रेम के रूप में समझने लगता है तो उसमें अदम्य शक्ति आ जाती है। भगवान सर्वथा एक ही है और पवित्रात्मा वह शक्ति है जो साधक को इस प्रेममय भगवान के आस्वादन से प्राप्त होती है। ईसाई धर्म रहस्यवादी नहीं है क्योंकि यह भगवान और मनुष्य के एकाकार सम्बन्ध को नहीं स्वीकार करता।

2.8.2 इस्लाम में भगवान-विचार

इस्लाम शब्द का शाब्दिक अर्थ है 'भगवान के प्रति आत्म समर्पण (Allah) = (Submission to God) से ही इंगित होता है कि इस्लाम धर्म में 'भगवान' ही केन्द्र बिन्दु है। कुरान भगवान की सत्यता को सर्वाधिक प्राथमिकता देता है। **कुरान का यह वाक्य 'परमेश्वर सत्य है (31/3/11)** इस कथन की पुष्टि करता है। इस्लाम धर्म में भगवान को 'अल्लाह' कहा गया है। अल्लाह एक और पूर्ण है। 'अल्लाह' शब्द का अर्थ है "The God one and Only' अर्थात् एक मात्र भगवान। भगवान पूर्ण है, इसलिए एक से अधिक भगवान की सत्ता को स्वीकार करना भगवान की पूर्णता का खंडन करना है। इस प्रकार इस्लाम एकेश्वरवाद को स्वीकार करता है।

इस्लाम धर्म में अल्लाह को शाश्वत, अनादि, अनन्त, असीमित, अदृश्य, अभौतिक और व्यक्तित्वपूर्ण है। भगवान और मनुष्य में गुणों के आधार पर भेद है क्योंकि भगवान अनादि, अनन्त और असीमित है जबकि मनुष्य सीमित, सान्त और अल्पशक्तिमान है। भगवान और मनुष्य में स्वामी और दास का सम्बन्ध है। कुरान में भगवान को पिता नहीं माना गया है, कहा गया है कि 'वह न किसी से पैदा हुआ है और न उससे कोई पैदा हुआ है।' अधिकांश धर्मों के ही समान कुरान में 'भगवान को स्वर्ग और नरक का रचयिता माना गया है। **कुरान में कहा गया है : 'भगवान ने भूमि में जो कुछ है सबको तुम्हारे लिए बनाया है।' 2/4/9 'वह तुम्हारा भगवान सब चीजों को बनाने वाला है। उसके सिवा कोई पूज्य नहीं। 4/7/2**

इस्लाम में भगवान को सृष्टिकर्त्ता माना गया है परन्तु सृष्टि का उपादान कारण उसे नहीं माना गया है। भगवान को उपादान कारण मानने से भगवान का निर्विकार स्वरूप खंडित हो जाता है जबकि इस्लाम धर्म में भगवान के निर्विकार स्वरूप पर बल दिया गया है। | इस्लाम में असत् से सत् की उत्पत्ति को स्वीकार किया गया है, यद्यपि तार्किक दृष्टि से यह मान्यता विरोधाभासी लगती है क्योंकि शून्य से शून्य की ही उत्पत्ति होती है। इस्लाम में भगवान को सृष्टिकर्ता के साथ-साथ पालनकर्त्ता और विध्वंसकर्ता भी माना गया हैI कुरान में कहा गया है, 'परमेश्वर मारता भी है और जिलाता भी है। भगवान करुणामय एवं रक्षक है। वह न्यायी है तथा कयामत के दिन जीवों का उनके कर्मों के अनुसार फल प्रदान करता है। अल्लाह प्रेममय है तथा दूसरों का उपकार करने वाले व्यक्तियों को प्रेम करता है। इसी प्रकार वे व्यक्ति भगवान के प्रेम के पात्र हैं जो मुहम्मद साहब के अनुगामी हैं, अभिमान रहित हैं तथा नैतिकता के मार्ग पर चलते हैं। भगवान की इच्छा के समक्ष अपने को समर्पित करने वाला व्यक्ति भगवान के साथ आध्यात्मिक सम्बन्ध स्थापित कर सकता है।

इस्लाम धर्म में भगवान के सात शाश्वत धर्मों या गुणों का प्रतिपादन किया गया है- (1) जीवन (Life). (2) ज्ञान (Knowledge), (3) अनन्तशक्ति (Omnipotence), (4) संकल्प (will), (5) श्रवण (Hearing), (6) दृष्टि (Sight), (7) वचन (Speech) | भगवान सम्पूर्ण जीवन का आधार है तथा भगवान अपनी सत्ता का प्रकाशन स्वयं करता है। भगवान सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, संकल्प युक्त और विश्व का संचालक है। भगवान अपने सेवकों और भक्तों की पुकार सुनता है। वह विश्वद्रष्टा है तथा सम्पूर्ण विश्व का नियंत्रण करता हैI

इस्लाम में भगवान और मनुष्य दोनों को ही व्यक्ति माना गया है फिर भी भगवान मानव से पूर्णतः भिन्न है क्योंकि भगवान की वैयक्तिक विशिष्टता अनूठी है। भगवान मानव के प्रति प्रेम और करुणा का भाव रखता है तथा मनुष्य भगवान के प्रति समर्पण भाव अभिव्यक्त कर भगवान की करुणा का पात्र बन सकता है। मानव को भगवान की प्राप्ति के लिए भगवान के

समक्ष पूर्णरूपेण अपने को समर्पित करके अपने व्यक्तित्व का त्याग करना होगा। 'नमाज' या प्रार्थना द्वारा भी मनुष्य भगवान के समक्ष पहुंच सकता है। भगवान की प्रार्थना केवल आध्यात्मिक होनी चाहिए। अल्लाह की पूजा में किसी प्रतीक अथवा माध्यम का उपयोग नहीं होना चाहिए। इस्लाम सभी प्रकार की मूर्ति पूजा का घोर विरोधी है। इमाम अथवा अन्य धर्माधिकारी जीव को भगवान से मिलाने वाले माध्यम नहीं है। इमाम मस्जिद में केवल नमाज का नेतृत्व करता है।

2.8.3 पारसी-धर्म में भगवान

पारसी धर्म में अहुर मजदा (Ahura Mazda) को भगवान माना गया है। भगवान सर्वशक्तिमान (Omnipotent), सर्वव्यापी (Omnipresent) और सर्वज्ञ (Onniscient) है। वह इस विश्व का स्रष्टा, पालनकर्ता और प्रलय कर्ता है। हिन्दू धर्म की भगवान विषयक धारणा भी उपरोक्त धारणा के समान है। पारसी धर्म में भगवान को न्यायी और दयालु माना गया है तथा भगवान के गुणों में प्रकाश (Light), शुभ मन (Good mind), उचित (Right), धर्मनिष्ठा (Piety), सम्पूर्णता (Well-being), प्रभुत्व (Dominion) और अमरत्व (Immortality) आदि सम्मिलित मानता है। अवेस्ता के प्रथम श्लोक में अहुरमजदा के गुणों की व्याख्या निम्न प्रकार से की गई है:अहुरमजदा, स्रष्टा, दीप्तिमान, तेजस्वी, महान और सर्वोत्तम है। वह सर्वाधिक सुन्दर, पूर्णतः अटल, बुद्धिमान और पूर्ण है। वह सर्वाधिक उदार आत्मा है।'

इसी प्रकार भगवान को सर्वद्रष्टा, सर्वाधिक शक्तिमान, न्यायप्रिय, दयालु एवं परोपकारी माना है। अहुरमजदा को नैतिकता का संस्थापक माना जाता है। वे शुभ कर्मों के लिए पुरस्कार और अशुभ कर्मों के लिए दण्ड प्रदान करते हैं। अहुरमजदा न तो विश्व में पूर्णतः व्याप्त है और न ही विश्व में पूर्णतः अव्याप्त है। भगवान के सृजनात्मक इच्छा और विचार का क्रियात्मक सिद्धान्त स्पेनतामेन्यु (Spenta Mainyu) एक पवित्र सत्ता है। यह अहरमजदा में ही निवास करता है। यद्यपि वह भगवान का अंग है फिर भी वह भगवान से भिन्न है। वह कोई व्यक्ति नहीं अपितु भगवान की सृजनात्मक शक्ति का द्योतक है। भगवान एक महान आध्यात्मिक व्यक्ति है।

2.8.4 कनफ्युशियस धर्म में भगवान की अवधारणा

कनफ्यूशियस इहलोकवाद का समर्थक या जिससे कि मानव जीवन में बेहतरी लायी जा सके। यही कारण है कि उन्होंने प्रत्यक्ष भगवान के सम्बन्ध में अपना दृष्टिकोण स्पष्ट नहीं किया है। एक समय एक शिष्य चीलू ने पूछा, "मैं भगवान की सेवा किस प्रकार कर सकता हूँ" ? इस प्रश्न के उत्तर में कनफ्युशियस ने कहा, 'जब तुम्हें यह ज्ञान नहीं है कि, मनुष्य की सेवा किस प्रकार की जाय तब देवों की सेवा में कैसे पूछ सकते हो। वे अपने शिष्यों को भगवान सम्बन्धी प्रश्नों को पूछने के लिए अनुत्साहित करते थे। परन्तु इससे यह निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि कनफ्युशियस अनीश्वरवादी थे। वस्तुतः उन्होंने भगवान के अस्तित्व का खंडन भी नहीं किया है। दूसरी और उनके कुछ सिद्धान्त ऐसे हैं जिनसे यह संकेत मिलता है कि उनका धर्म ईश्वरवादी है। कनफ्युशियस का मत है, "मनुष्य को नैतिक बनाये रखने का श्रेय भगवान को है। भगवान ने ही मानव में सद्गुण (virtue) का समावेश किया है।" कनफ्युशियस भगवान में विश्वास करते थे। उनका कथन है, "If my doctrines are to prevail it is so ordered of God, if they are to fail it is so ordered of God. "

कनफ्युशियस धर्म के विभिन्न धर्मग्रन्थों से यह पता चलता है कि भगवान को तीन नामों से

सम्बोधित किया गया है। भगवान को शन्ग टी (Shang Ti) कहा गया है जिसका तात्पर्य है 'महान शासक' (Supreme Ruler)। भगवान का दूसरा नाम टायेन (Tien) है जिसका अर्थ 'स्वर्ग' होता है। यह सम्बोधन भगवान के महान नैतिक नियम का प्रतिनिधित्व करता है। भगवान का तीसरा नाम 'मिन्ग' (Ming) है जो भाग्य तथा नियति का पर्याय है। इस धर्म में पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, पर्वत, नदी आदि देवी-देवताओं की उपासना का संकेत मिलता है।

2.8.5 यहुदी-धर्म में भगवान-विचार

यहूदी धर्म एकेश्वरवाद की स्थपना करता है. तथा भगवान को विश्व में व्याप्त नैतिक व्यवस्था का संचालक मानता है। यहूदी की स्थापना के पूर्व पहाड़, नदी, झरने आदि की उपासना की जाती थी तथा अनेकेश्वरवाद में विश्वास किया जाता थाIयहूदी धर्म में व्यक्तित्व पूर्ण भगवान की धारणा का समर्थन किया गया है तथा उसे मनुष्य की तरह ससीम न मानकर असीम माना गया है। मनुष्य भगवान के प्रेम और दयाभाव की अपेक्षा करता है यहूदी धर्म में भगवान को यहोवा (Jehovah) कहा गया है, भगवान ने स्वयं कहा है, 'I am Jehovah' यहोवा को छोड़कर किसी अन्य सत्ता की आराधना करना कल्पना के बिरुद्ध है। भगवान परमसत्ता है, वह अद्वितीय, असीम, सर्वज्ञ, विश्व का स्रष्टा और सर्वशक्तिमान है। भगवान विश्वपालक, संचालक, नित्य, देशकालातीत, विश्वातीत और पवित्र सत्ता है। वह स्वेच्छा से जो चाहता है, वही करता हैं। भगवान न्यायप्रिय, दयालु और शान्तिप्रिय तथा न्यायपरायण है। यहूदी धर्म में भगवान में कुछ अशोभनीय गुणों को स्वीकार करता है जैसे उसमें ईर्ष्या तथा कठोरता नामक गुण भी निहित हैं। यहूदी धर्म भगवान और मनुष्य के बीच पिता और पुत्र का सम्बन्ध माना गया है। पिता की तरह भगवान मनुष्यों के साथ न्याय करता है तथा क्षमा प्रदान करता हैं। यहूदी धर्म की इस धारणा के कारण आलोचकों ने मानवीयकरण (Anthroponmorphism) का आरोप लगाया है। कहा गया है कि भगवान मनुष्य की तरह अपूर्ण और ससीम नहीं हो सकता है। ससीम भगवान को भगवान कहना विरोधाभास है।

यहूदी धर्म भगवान के ईर्ष्या और कठोरता के गुणों के आधार पर अशुभ की समस्या का समाधान किया है। कहा गया है कि भगवान भूकम्प, तूफान आदि के द्वारा समस्त | मानव जाति को तबाह कर सकता है क्योंकि वह ईर्ष्यालु और कठोर स्वभाव से युक्त होता है। भगवान द्वारा उत्पन्न अशुभ तत्वों के कारण संसार के प्राणियों को कठिनाई होती है तथा उनका जीवन कष्टप्रद हो जाता है। यहूदी धर्म की प्रारंभिक अवस्था में अशुभ तत्वों से बचने के लिए बलिदान का प्रावधान था परन्तु कालान्तर में भगवान को प्रसन्न करने | के लिए हृदय की पवित्रता, दान, शिक्षा आदि कर्मों का सम्पादन आवश्यक है। व्यक्तिवादी धर्म होने के कारण यहूदी धर्म व्यक्ति की महत्ता पर बल देता है। प्रत्येक मनुष्य को अपने कर्मों का फल भोगना पड़ता है। अच्छे कर्मों के लिए उसे पुरस्कार दिया जाता है तथा अशुभ कर्मों के लिए उसे दण्ड का भागी होना पड़ता है। यहूदी धर्म कर्म के सिद्धान्त को महत्वपूर्ण सिद्धान्त मानता है। कर्म के साथ-साथ यहूदी धर्म पुर्नजन्म के सिद्धान्त को स्वीकार करता है। अपने कर्मों का फल भोगने के लिए आत्मा को एक जन्म से दूसरे जन्म में भटकना पड़ता है। मृत्यु जीवन का अन्त नहीं है। हिन्दू धर्म की ही तरह यहूदी धर्म भी आत्मा की अमरता, कर्म का सिद्धान्त और पुर्नजन्म के सिद्धान्त का समर्थन करता है।

2.9 सारांश

भगवान की अवधारणा एवं स्वरूप से संबंधित इस ईकाई का अध्ययन करने के बाद सारांश रूप में यह कहा जा सकता है कि विश्व के सभी धर्म और दर्शन में थोड़े बहुत अंतर के साथ भगवान का स्वरूप एक जैसा है।भगवान अर्थात जिसका ज्ञान कभी नष्ट नहीं होता,वह कभी मृत्यु को प्राप्त नहीं होता, उसमें दुख का लेशमात्र भी नहीं है। वह परम आनंद रूप है। हिन्दू धर्म एवं दर्शन में इसीलिए उसे सच्चिदानंद भी कहते हैं।वह सृष्टि के कण-कण में व्याप्त है और वह इस सृष्टि से परे भी है।

भगवान शब्द से एक ऐसे अस्तित्व की कल्पना की जाती है जिसने इस विश्व की उत्पत्ति की है।वही भगवान इस विश्व के सभी प्राणियों का पालन करता है तथा प्रलय भी उस भगवान की इच्छा से ही होता है।

वह निराकार और साकार दोनों रूप है।वह प्राणियों पर दया करने वाला दयालु है।सभी प्राणियों के कर्मों के अनुसार उन्हें फल देता है।न्यायाधीश है।अपने भक्तों के लिए तथा सज्जनों के उद्धार एवं दुष्टों को दंड देने के लिए वह इस धरती पर अवतार भी लेता है। जैसा कि गीता में भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं-

परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥

गीता, अध्याय-4,श्लोक-8

अर्थात् सत्पुरुषों की रक्षा करने के लिए दुष्कर्म करने वालों दुष्टों के विनाश के लिए और धर्म की पुनः स्थापना करने के लिए मैं (श्री कृष्ण) प्रत्येक युग में जन्म लेता हूँ।

2.10 पारिभाषिक शब्दावली

अदृष्ट : अनदेखा

अनादि : आदिरहित/ नित्य/ अनादिकाल से

चित् : चेतना/जानना

चित्त : मन/ बुद्धि/ अंत:करण

तत्वमीमांसा : मूल तत्व या प्रकृति से संबंधित

दिक् : दिशा

प्रत्यय : विचार/ भाव/ अनुभव

ब्रह्म : बृह धातु से बना। जिसका अर्थ है जो निरंतर बढ़ता रहे। संसार का सर्वोच्च तत्व।

विश्वातीत : विश्व से परे

शाश्वत : सनातन/ चिरस्थायी/ सदा के लिए

श्रुति : वाणी (ऋषियों के मुख से वेदों के मंत्र उच्चारित हुए थे तथा गुर-शिष्य परंपरा द्वारा वाणी से सुनकर ही वेदों के ज्ञान का प्रचार-प्रसार किया जाता था।इसलिए वेदों को श्रुति ग्रंथ भी कहा जाता है।

2.11 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शिवमहापुराण
2. श्रीमद्भागवत पुराण
3. महर्षि बाल्मीकि,रामायण
4. तुलसीदास,रामचरितमानस
5. वेदव्यास,महाभारत
6. कल्याण- हिन्दू संस्कृति अंक, संवत् 2077 (चौबीसवें अंक का विशेषांक),गीताप्रेस गोरखपुर।
7. महर्षि पतंजलि, योगदर्शन(व्यासभाष्य सहित)
8. महर्षि गौतम, न्यायदर्शन (वात्स्यायन भाष्य सहित)
9. महर्षि कणाद,वैशेषिक दर्शन
10. प्रशस्तपाद,पदार्थधर्मसंग्रह
11. ब्रह्मसूत्रशांकरभाष्य,(सत्यानन्दी टीका सहित), चौखम्बा विद्याभवन, चौक, वाराणसी, संस्करण-2007
12. ऋषिकांत पाण्डेय, धर्मदर्शन, पियर्सन इंडिया एजुकेशन सर्विसेज प्राइवेट लिमिटेड, नोएडा, उत्तर प्रदेश, प्रथम संस्करणसंस्करण-2006

2.12 बोध प्रश्न

1. हिन्दू परम्परा में भगवान के सम्प्रत्यय का विश्लेषण कीजिए।
2. भगवान तथा God की अवधारणा का तुलनात्मक विवेचन कीजिए।
3. हिन्दू धार्मिक व्यवस्था में भगवान की अवधारणा के वैशिष्ट्य का प्रतिपादन कीजिए।
4. किन अर्थों में भगवान का सम्प्रत्यय God या अल्लाह से सम्प्रत्यय से भिन्न है, स्पष्ट कीजिए।